

# हारीतगीता

[प्राचीन कालमें हारीतमुनिने मुमुक्षु पुरुषके प्रधान कर्तव्योंसे सम्बद्ध जो उपदेश दिये थे, उन्हींका परिचय शरशय्यापर लेटे पितामह भीष्मद्वारा युधिष्ठिरको दिया गया था। यह वर्णन महाभारतके शान्तिपर्वमें प्राप्त है, इसीको 'हारीतगीता' कहते हैं। इस लघुकाय गीतामें मुख्यतः संन्यासीके आचरण एवं कर्तव्योंका वर्णन है। इसकी भाषा अत्यन्त सरल, सुबोध तथा सारगर्भित है। संन्यासियोंके लिये प्रकाशस्तम्भसदृश यह हारीतगीता यहाँ सानुवाद प्रस्तुत की जा रही है—]

युधिष्ठिर उवाच

किंशीलः किंसमाचारः किंविद्यः किंपरायणः ।

प्राप्नोति ब्रह्मणः स्थानं यत् परं प्रकृतेर्ध्रुवम् ॥ १ ॥

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! प्रकृतिसे परे जो परब्रह्मका अविनाशी परमधाम है, उसे कैसे स्वभाव, किस तरहके आचरण, कैसी विद्या और किन कर्मोंमें तत्पर रहनेवाला पुरुष प्राप्त कर सकता है? ॥ १ ॥

भीष्म उवाच

मोक्षधर्मेषु निरतो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ।

प्राप्नोति परमं स्थानं यत् परं प्रकृतेर्ध्रुवम् ॥ २ ॥

भीष्मजीने कहा—राजन्! जो पुरुष मोक्षधर्मोंमें तत्पर, मिताहारी और जितेन्द्रिय होता है, वह उस प्रकृतिसे परे परब्रह्म परमात्माका जो अविनाशी परमधाम है, उसे प्राप्त कर लेता है ॥ २ ॥

(अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।

हारीतेन पुरा गीतं तं निबोध युधिष्ठिर ॥)

युधिष्ठिर! पूर्वकालमें हारीतमुनिने जो ज्ञानका उपदेश किया है,

इस विषयमें विज्ञ पुरुष उसी प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं, उसे सुनो।

**स्वगृहादभिनिस्सृत्य लाभेऽलाभे समो मुनिः ।  
समुपोढेषु कामेषु निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥ ३ ॥**

मुमुक्षु पुरुषको चाहिये कि लाभ और हानिमें समान भाव रखकर मुनिवृत्तिसे रहे और भोगोंके उपस्थित होनेपर भी उनकी आकांक्षासे रहित हो अपने घरसे निकलकर संन्यास ग्रहण कर ले ॥ ३ ॥

**न चक्षुषा न मनसा न वाचा दूषयेदपि ।  
न प्रत्यक्षं परोक्षं वा दूषणं व्याहरेत् क्वचित् ॥ ४ ॥**

न नेत्रसे, न मनसे और न वाणीसे ही वह दूसरेके दोष देखे, सोचे या कहे। किसीके सामने या परोक्षमें पराये दोषकी चर्चा कहीं न करे ॥ ४ ॥

**न हिंस्यात् सर्वभूतानि मैत्रायणगतश्चरेत् ।  
नेदं जीवितमासाद्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥ ५ ॥**

समस्त प्राणियोंमेंसे किसीकी भी हिंसा न करे—किसीको भी पीड़ा न दे। सबके प्रति मित्रभाव रखकर विचरता रहे। इस नश्वर जीवनको लेकर किसीके साथ शत्रुता न करे ॥ ५ ॥

**अतिवादांस्तितिक्षेत नाभिमन्येत कञ्चन ।  
क्रोध्यमानः प्रियं ब्रूयादाक्रुष्टः कुशलं वदेत् ॥ ६ ॥**

यदि कोई अपने प्रति अमर्यादित बात कहे—निन्दा या कटुवचन सुनाये तो उसके उन वचनोंको चुपचाप सह ले। किसीके प्रति अहंकार या घमंड न प्रकट करे। कोई क्रोध करे तो भी उससे प्रिय वचन ही बोले। यदि कोई गाली दे तो भी उसके प्रति हितकर वचन ही मुँहसे निकाले ॥ ६ ॥

प्रदक्षिणं च सव्यं च ग्राममध्ये च नाचरेत्।

भैक्षचर्यामनापन्नो न गच्छेत् पूर्वकेतितः ॥ ७ ॥

गाँव या जनसमुदायमें दायें-बायें न करे—किसीका पक्ष-विपक्ष न करे तथा भिक्षावृत्तिको छोड़कर किसीके यहाँ पहलेसे निमन्त्रित होकर भोजनके लिये न जाय ॥ ७ ॥

अवकीर्णः सुगुप्तश्च न वाचा ह्यप्रियं वदेत्।

मृदुः स्यादप्रतिकूरो विस्रब्धः स्यादकथनः ॥ ८ ॥

कोई अपने ऊपर धूल या कीचड़ फेंके तो मुमुक्षु पुरुष उससे आत्मरक्षामात्र करे। बदलेमें स्वयं भी वैसा ही न करे और न मुँहसे कोई अप्रिय वचन ही निकाले। सर्वदा मृदुताका बर्ताव करे। किसीके प्रति कठोरता न करे। निश्चिन्त रहे और बहुत बढ़-बढ़कर बातें न बनाये ॥ ८ ॥

विधूमे न्यस्तमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने।

अतीतपात्रसञ्चारे भिक्षां लिप्सेत वै मुनिः ॥ ९ ॥

जब रसोईघरसे धूआँ निकलना बन्द हो जाय, अनाज-मसाला कूटनेके लिये उठाया हुआ मूसल अलग रख दिया जाय, चूल्हेकी आग ठंडी पड़ जाय, घरके लोग भोजन कर चुके हों और बर्तनोंका संचार—रसोई परोसी हुई थालीका इधर-उधर ले जाया जाना बन्द हो जाय, उस समय संन्यासी मुनिको भिक्षा प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिये ॥ ९ ॥

प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रालाभेष्वनादृतः ।

अलाभे न विहन्येत लाभश्चैनं न हर्षयेत् ॥ १० ॥

उसे केवल अपनी प्राणयात्राके निर्वाहमात्रका यत्न करना चाहिये। भर पेट भोजन मिल जाय, इसकी इच्छा नहीं रखनी चाहिये। यदि भिक्षा न मिले तो उससे मनमें पीड़ाका अनुभव न करे और मिल जाय तो उसके कारण वह हर्षित न हो ॥ १० ॥

लाभं साधारणं नेच्छेन्न भुञ्जीताभिपूजितः ।

अभिपूजितलाभं हि जुगुप्सेतैव तादृशः ॥ ११ ॥

साधारण (लौकिक) लाभकी इच्छा न करे। जहाँ विशेष आदर एवं पूजा होती हो, वहाँ भोजन न करे। मुमुक्षु पुरुषको आदर-सत्कारके लाभकी तो निन्दा करनी चाहिये ॥ ११ ॥

न चान्नदोषान् निन्देत न गुणानभिपूजयेत् ।

शय्यासने विविक्ते च नित्यमेवाभिपूजयेत् ॥ १२ ॥

भिक्षामें मिले हुए अन्नके दोष बताकर उनकी निन्दा न करे और न उसके गुण बताकर उन गुणोंकी प्रशंसा ही करे। सोने और बैठनेके लिये सदा एकान्तका ही आदर करे ॥ १२ ॥

शून्यागारं वृक्षमूलमरण्यमथवा गुहाम् ।

अज्ञातचर्यां गत्वान्यां ततोऽन्यत्रैव संविशेत् ॥ १३ ॥

सूने घर, वृक्षकी जड़, जंगल अथवा पर्वतकी गुफामें अथवा अन्य किसी गुप्त स्थानमें अज्ञातभावसे रहकर आत्मचिन्तनमें ही लगा रहे ॥ १३ ॥

अनुरोधविरोधाभ्यां समः स्यादचलो ध्रुवः ।

सुकृतं दुष्कृतं चोभे नानुरुध्येत कर्मणा ॥ १४ ॥

लोगोंके अनुरोध या विरोध करनेपर भी सदा समभावसे रहे, निश्चल एवं स्थिरचित्त हो जाय तथा अपने कर्मोंद्वारा पुण्य एवं पापका अनुसरण न करे ॥ १४ ॥

नित्यतृप्तः सुसन्तुष्टः प्रसन्नवदनेन्द्रियः ।

विभीर्जघ्यपरो मौनी वैराग्यं समुपाश्रितः ॥ १५ ॥

सर्वदा तृप्त और सन्तुष्ट रहे। मुख और इन्द्रियोंको प्रसन्न रखे। भयको पास न आने दे। प्रणव आदिका जप करता रहे तथा वैराग्यका आश्रय ले मौन रहे ॥ १५ ॥

अभ्यस्तं भौतिकं पश्यन् भूतानामागतिं गतिम्।  
 निःस्पृहः समदर्शी च पक्वापक्वेन वर्तयन्।  
 आत्मना यः प्रशान्तात्मा लब्धाहारो जितेन्द्रियः ॥ १६ ॥

भौतिक देह, इन्द्रिय आदि सभी वस्तुएँ नष्ट होनेवाली हैं और प्राणियोंके आवागमन—जन्म और मरण बारम्बार होते रहते हैं। यह सब देख और सोचकर जो सर्वत्र निःस्पृह तथा समदर्शी हो गया है, पके (रोटी, भात आदि) और कच्चे (फल, मूल आदि)—से जीवन—निर्वाह करता है, आत्मलाभके लिये जो शान्तचित्त हो गया है तथा जो मिताहारी और जितेन्द्रिय है, वही वास्तवमें संन्यासी कहलानेयोग्य है ॥ १६ ॥

वाचो वेगं मनसः क्रोधवेगं  
 हिंसावेगमुदरोपस्थवेगम् ।  
 एतान् वेगान् विषहेद् वै तपस्वी  
 निन्दा चास्य हृदयं नोपहन्यात् ॥ १७ ॥

संन्यासी तपस्वी होकर वाणी, मन, क्रोध, हिंसा, उदर और उपस्थ—इनके वेगोंको सहता हुआ इन्हें वशमें रखे। दूसरोंद्वारा की हुई निन्दा उसके हृदयमें कोई विकार न उत्पन्न करे ॥ १७ ॥

मध्यस्थ एव तिष्ठेत प्रशंसानिन्दयोः समः।  
 एतत् पवित्रं परमं परिव्राजक आश्रमे ॥ १८ ॥

प्रशंसा और निन्दा—दोनोंमें समान भाव रखकर उदासीन ही रहना चाहिये। संन्यासाश्रममें इस प्रकारका आचरण परम पवित्र माना गया है ॥ १८ ॥

महात्मा सर्वतो दान्तः सर्वत्रैवानपाश्रितः।  
 अपूर्वचारकः सौम्यो अनिकेतः समाहितः ॥ १९ ॥

संन्यासीको महामनस्वी, सब प्रकारसे जितेन्द्रिय, सब ओरसे

असंग, सौम्य, मठ और कुटियासे रहित तथा एकाग्रचित्त होना चाहिये। उसे अपने पूर्व आश्रमके परिचित स्थानोंमें नहीं विचरना चाहिये ॥ १९ ॥

**वानप्रस्थगृहस्थाभ्यां न संसृज्येत कर्हिचित्।  
अज्ञातलिप्सं लिप्सेत न चैनं हर्ष आविशेत् ॥ २० ॥**

वानप्रस्थों और गृहस्थोंके साथ उसे कभी संसर्ग नहीं रखना चाहिये। अपनी रुचि प्रकट किये बिना ही जो वस्तु प्राप्त हो जाय, उसीको लेनेकी इच्छा रखनी चाहिये तथा अभीष्ट वस्तुके मिलनेपर उसके मनमें हर्षका आवेश नहीं होना चाहिये ॥ २० ॥

**विजानतां मोक्ष एष श्रमः स्यादविजानताम्।  
मोक्षयानमिदं कृत्स्नं विदुषां हारितोऽब्रवीत् ॥ २१ ॥**

यह संन्यासाश्रम ज्ञानियोंके लिये तो मोक्षरूप है, परंतु अज्ञानियोंके लिये श्रमरूप ही है। हारीतमुनिने विद्वानोंके लिये इस सम्पूर्ण धर्मको मोक्षका विमान बताया है ॥ २१ ॥

**अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा यः प्रव्रजेद् गृहात्।  
लोकास्तेजोमयास्तस्य तथानन्त्याय कल्पते ॥ २२ ॥**

जो पुरुष सबको अभय-दान देकर घरसे निकल जाता है, उसे तेजोमय लोकोंकी प्राप्ति होती है तथा वह अनन्त परमात्मपदको प्राप्त करनेमें समर्थ होता है ॥ २२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि हारीतगीता सम्पूर्णा ॥

